International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

हिन्दी काव्य में किसान

पूनम कुमारी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक–124001 (हरियाणा)

शोध आलेख सार– प्राचीन काल से ही कृषि को मुख्य व्यवसाय के रूप में अपनाने वाले भारत देश के कृषकों का जीवन कष्ट, अभाव और परेशानियों से ग्रस्त रहा है जबकि समाज का का उत्पादक वर्ग किसान है, उसी की उन्नति से देश की उन्नति सम्भव है और उसकी बदहाली देश की बदहाली है। उसके जीवन का प्रत्येक क्षण संघर्षयुक्त रहा है। अशिक्षित होने के कारण उसकी कठिनाईयां और भी बढ़ती जा रही हैं। शायद ही उसे कभी जमींदारी और महाजनी शोषण से मुक्ति मिली हो अन्यथा भीषण दुपहरी और कड़ाके की ठंड़ में भी खेतों में काम करते हुए भूख और प्यास से जुझता रहा है। 20वीं सदी के प्रारम्भ तक आते–आते तो सम्पूर्ण भारतीय किसान अंग्रेजो के शोषण का शिकार हो गया था। कृषक कई तरह की यातनाएँ झेलता था। प्राकृतिक आपदाओं (सूखा, अकाल, अतिवृष्टि) से लेकर मानवीय अत्याचार तक। जिसका पर्याप्त वर्णन भारतीय साहित्य में मिलता है।

मूलशब्द– कृषक वर्ग, दरिद्रता, गरीबी, समाज, अभिशाप, संघर्ष, जमींदार।

भूमिका– जमींदार और कृषक वर्गों का पारस्परिक संघर्ष शताब्दियों से होता चला आ रहा है। जमींदार के चंगुल में फंसे किसान किस तरह दरिद्रता का जीवन यापन करते हैं। यह भी एक विचारणीय प्रश्न है? कबीर की वाणियों से तो यह भी सन्दर्भ में आय है कि गरीब किसान अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने लड़के–लड़कियों तक को गिरवी रख देते थे। उन्हीं के शब्दों में– ''को है लरका बेचई, लरकी बेचे कोई। साँझा करे कबीर स्यों, हरि सँग बनज करेई।''[1] कबीर जी थे तो बुनकर, मगर

[1] कबीरः विविध आयाम, प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ० 88

उनके भीतर अपनी बदहाली से टूटे किसानों का मन था जो प्रकृति और समाज की मारों को चुपचाप झेलता रहता था और कुछ भी नहीं बोलने के लिए अभिशप्त था। कवि कहता है– ''मैं दीवान तक पहुँच नहीं सकता। एक मुझे मारता है और दूसरा मुझे बाँधता है। गाँव का ठाकुर खेत को बढ़ाकर नापता है और 'काईथ' ज्यादा लगान वसूल करता है। उन्हीं के शब्दों में, ''गाँइ कु ठाकुर खेत कु नेपै काईथ खरच न पारै। जोरि जेवरी खेति पसारै, सब मिलि मोकौं मारै हो राम, खोटो महतौ बिकट बलाही, सिर कसदम का पारै। बुरौ दीवान दादि नहिं लागै, इक बाँधे इक मारै हो राम।''[2] कबीर कहते हैं कि उस समय पंचायती व्यवस्था भी पूरी तरह भ्रष्ट हो चुकी थी। इनके लिए कबीर ने 'पंच', 'पंचो', 'पंचकिसान' जैसे सम्बोधनों का इस्तेमाल किया है। कुल मिलाकर जमींदार और सरकार द्वारा किए गए शोषण को किसान कानूनी मानता था और सिर झुकाकर इसको स्वीकार करता था। लगान बेगार आदि को वह उनका परम्परागत और वैधानिक अधिकार मानता था और दूसरी और किसान का आपस में संगठन और एकता का अभाव था जिसके कारण उनका मनमाना शोषण होता था।

इरफान हबीब ने अपनी पुस्तक में (दि एग्रेनियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया) में किसानों की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है– ''किसान जैसे अपने घर के भीतर भी मालिक नहीं थे उनकी दशा दासों से बेहतर न थी। सुल्तानों ने भूमिकर अधिकारों को किसानों से निमर्मतापूर्वक कर वसूल करने के कठोर आदेश दे रखे थे। ताकि वे कृषि उत्पादन को तुरन्त बेचने पर विवश हो जाएँ।''[3]

सूर के काव्य में जिस किसान–जीवन का चित्रण है उसका एक विशेष सामाजिक और ऐतिहासिक सन्दर्भ है। वह संदर्भ सामंती व्यवस्था का है, जिसके भीतर किसान–जीवन के अनुभव का स्वरूप बना है। सामंती व्यवस्था में लगान की लूट के साथ सूदखोरी की प्रथा भी किसानों को तबाह करती रही है। सूरदास जी कहते हैं

[2] कबीर ग्रंथावली पदा० 222, पृ० 89
[3] इरफान हबीब: दि एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, पृ० 97

गाँव का पटवारी भी कपटी है जो 'बही' में झूठा हिसाब लिखता है और किसान के ऊपर बकाया दिखाता है और बेबस, लाचार किसान इनके चंगुल से कभी नहीं निकल पाता। उन्हीं के शब्दों में, ''धरम जमानत मिल्यौ न चाहिं तातैं ठाकुर लूटौ। अहँकारी पटवारी कपटी, झूठी लिखत बही। लागै धरम, बतावै अधरम, बाकी सबै रही।''[4] सूरदास जी ने वहाँ के स्थानीय राजकर्मचारियों के अन्याय की ही निंदा नहीं की बल्कि वहाँ के राजा, कोतवाल, अमीन, वजीरों की भी निंदा की है और पटवारी, जमीन मस्तौफा, महाजन आदि को 'यम' की उपाधि दी जो किसानों के पास जाते हैं और मालगुजारी का लेखा माँगते हैं। किसान हमेशा से अभावग्रस्त रहा है, समस्याओं से जूझता रहा है लेकिन इसके बावजूद भी वह अपनी मेहनत और कर्तव्य के प्रति ईमानदार रहा है। किसान को आज भी राजनेता, साहूकार, पटवारी व प्रशासनिक अधिकारी खिलौना देकर बुझाते आये हैं। कभी भी दिल से किसानों की समस्याओं को समाप्त करने का संकल्प कोई नहीं लेता है। दरअसल भारत में जब से नवपूंजीवाद का आगमन हुआ है तब से किसानों के उपर मुगल काल से लेकर अंग्रेजों तक सभी ने कड़ा रूख ही अख्तियार किया है और जिससे जितना बन पड़ा है शोषण किया है या जिसको जितनी जरूरत रही है उतना शोषण किया। एक बानगी मध्यकालीन कवि तुलसीदास ने व्यक्त किया है। उन्होंने अपने समय की भयावहता को इन शब्दों में व्यक्त किया है। ''खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि, बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।''[5] यह कहना गलत नहीं होगा कि भारत में जब लोकतंत्र नहीं था तब भी और अब जब लोकतंत्र आया तब भी, किसान शोषण से मुक्त नहीं हुए। दरअसल किसान विश्व का एक ऐसा समाज है जिसके बिना जीवन की परिकल्पना असम्भव है, फिर भी हमारे यहाँ प्रकारांतर से किसान उपेक्षा के शिकार होते रहे हैं और आज भी हो रहे हैं। इस उपेक्षा और अपमान का उदाहरण है हमारे देश के किसानों की आत्महत्या।

[4] सूर 185
[5] तुलसीदास, कवितावली, पृ० 48

कुल मिलाकर प्राचीन काल से लेकर चाहे मध्यकाल हो चाहे आधुनिक काल हो किसानों का शोषण होता रहा है। भारतीय साहित्यकारों ने दीन, हीन, अभागे और पशुतुल्य जीवन बिताने वाले कृषक को अपने काव्य का विषय बनाते हुए मानव समाज में दया भाव की जाग्रति करनी चाही है। आधुनिक साहित्यकारों ने भी कृषक के ऊपर हो रहे शोषण को अपने काव्य का विषय बनाया है। छायावादी कवियों में निराला की कई कविताओं में किसान जीवन रूपायित हुआ है। उनकी प्रसिद्ध कविता 'बादल राग' की पंक्तियों तो किसानों को समर्पित हैं ही– जीर्ण बाहु है, जीर्ण शरीर तुझे बुलाता कृषक अधीर, ऐ विप्लव के वीर!''[6] निराला जी इसी वर्ग (शोषित वर्ग) में क्रांति की शक्ति देखते हैं और उन्हें संगठित होने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं, ''संगठित हो जाओ, आओ, बाहुओ से भर, भूले हुए भाइयों को, अपनाओं अपना आदर्श तुम।''[7]

हिन्दी कविता में प्रगतिवाद का स्वागत करने वाले सुमित्रानन्दन पंत की 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' संकलन की कई कविताओं में किसान जीवन उपस्थित है। महाकवि पन्त ने किसान जीवन और उसके यथार्थ को अत्यन्त सम्मान एवं सहानुभूति की दृष्टि से देखा है।

किसानों की सबसे ज्वलंत समस्या ऋण के बोझ से मुक्त होने की है। कवि नागार्जुन भी आम जनता के कवि है। इसलिए मुख्य रूप से उन्होंने अपनी कविताओं में भारत के निम्न मध्यवर्गीय किसान के जीवन को चित्रित किया है। 'अकाल और उसके बाद' शीर्षक कविता अकाल के सन्दर्भ में ही सही किसान जीवन का पूरा परिदृश्य ही रच देती है। कवि नागार्जुन इन शोषित किसानों की स्थिति का वर्णन करते हुए कहता है कि ये अभागे कर्ज के डर से अपने बच्चों को स्कूल भी नहीं भेज पाते हैं, ''दवा न कर पाते रोगों की, यम को पास बुलाते हैं, हरि इच्छा या राम भरोसे, अपने को

[6] निराला, बादल राग, पृ० 43
[7] निराला, अपरा (छत्रपति शिवाजी का पत्र), 2000, पृ० 86

समझाते हैं। मिल वाला मनमानी करता, रूख अगर उपजाते हैं, खर्चों के डर से भी बच्चों को कुछ नहीं पढ़ाते हैं।''[8]

यह भी समाज की विडम्बना ही रही है कि अन्नों की अट्टालिका खड़ी करने वाले किसान स्वयं एक–एक दाने के लिए तरसते हैं। न रहने को घर, न पहनने को वस्त्र, न खाने को अन्न। ऊपर से उनका कर्ज द्रोपदी का चीर हो जाता है। जो कभी समाप्त होने का नाम नहीं लेता– ''पक्षी भी भर पेट चुग चर लेते हैं, प्राणों का आधार कुछ न कुछ कर लेते हैं, कर्ज किसी से कभी न खस पूरा कर लेते हैं और एक हम कि नित बढ़ता ऋण का भार है फिर भी हमकों पेट भर मिलता नहीं आहार है।''[9] अर्थात् कृषकों को शोषित करने वाले जमींदार ही नहीं अपितु पटवारी तथा कारिन्दे जैसे अनेक लोग हैं जो उनके रक्त को चूसते हैं।

छायावादोत्तर कवियों में किसान जीवन पर लिखी गयी एक मार्मिक कविता भगवतीचरण वर्मा की 'भैंसागाड़ी' है– इस कविता में कवि ने भारतीय कृषक की आर्थिक स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है– ''भैंसागाड़ी पर लदा हुआ, जा रहा चला जर्जर। है उसे चुकाना सूद कर्ज, है उसे चुकाना अपना कर। जितना खाली है उसका घर, उतना खाली है उसका अन्दर।''[10] जमींदार या सरकार द्वारा किये गए शोषण को किसान अधिकांश कानूनी मानता है और सिर झुकाकर स्वीकार करता है इसलिए कभी उसका विरोध नहीं करता। किसानों ने विद्रोह तब किया जब शोषण की सीमा वैध और परम्परानुमोदित सीमा से बहुत आगे चली गई अन्यथा किसान 'गमखोर' ही रहता है। किसान आज भी महँगाई के नीचे दबता जा रहा है। उत्पादन और उत्पादित वस्तु के बाजार भाव ने किसान की जिन्दगी को और भी दूभर बना दिया। इस तरह किसान के हर उत्पाद बाजार में सरकार के बन्धक हैं। उनकी नग्नता एवं बुभुक्षा दिन प्रतिदिन

[8] नागार्जुन, हजार–हजार बाहों वाली, पूरी आजादी का संकल्प आज दुहराते हैं, पृ० 50
[9] सनेहीः अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० 250
[10] भगवतीचरण वर्मा, मेरी कविताएँ, पृ० 174

दयनीय होती जा रही है। इनकी पुकार सुनने वाला कोई नहीं। यह समाज की विडम्बना ही तो रही है कि जो किसान पूरे राष्ट्र के लिए अन्न उगाता है वही रात को भूखा रोता है। चाहे ज्येष्ठ माह की गर्मी हो चाहे पूस हो, दिन–रात मेहनत करने के बाद भी भारतीय किसान अभाव ग्रस्त जीवन यापन कर रहा है। रामधारी सिंह दिनकार ने किसानों की ऐसी स्थिति को 'हुँकार' कविता में उजागर किया है। उन्ही के शब्दों में– ''जेठ हो कि हो पूस, हमारे कृषकों को आराम नहीं है, छूटे कभी संग बैलों का ऐसा कोई याम नहीं है। मुख में जीभ शक्ति भुजा में जीवन में सुख का नाम नहीं है। वसन कहाँ? सूखी रोटी भी मिलती दोनों शाम नहीं है।''[11]

ऐसे अहसाय पर राष्ट्र के लिए आवश्यक सेवा प्रदान करने वाले कृषकों के उत्थान के लिए जगह–जगह से साहित्यकारों ने आवाज उठाई हैं। जिनका लक्ष्य दुःखी और शोषित कृषक वर्ग के नव–जीवन का मार्ग दिखाना हैं। अर्थात् जहाँ दारिद्रय, शोषण और दैन्य की अनुपस्थिति हो। नवीन युग के सन्दर्भ में कृषक को गत रूढ़ि–रीतियों के जड़–बन्धनों को छोड़ना होगा और कृषि के क्षेत्र में नवीन प्रयोग और नये विचार अपनाने होंगे। हालांकि अब किसान सचेत होकर एक होने लगे हैं। कवि सुमित्रानंदन पंत कहता है– आज कृषकों को दासता के बंधन खोलकर श्रम संगठन करते हुए नव जीवन के अग्नि बीज बोने हैं जिससे संसार में सुख समृद्धि और श्री वृद्धि हो सके। कवि के शब्दों में, ''आज धरा श्रम सकल एक हो, मात्र दासता के बंधन खो। अग्नि बीज नव जीवन के वो, स्वर्णशस्य बन छाये लहराये।''[12]

सन्दर्भ सूची–

1. कबीरः विविध आयाम, प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ० 88
2. कबीर ग्रंथावली पदा० 222, पृ० 89

[11] दिनकर, हुंकार, पृ० 5
[12] सुमित्रानंदन पंत, रजत शिखरः उतरशती, पृ० 84

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

3. इरफान हबीबः दि एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, पृ० 97
4. सूर 185
5. तुलसीदास, कवितावली, पृ० 48
6. निराला, बादल राग, पृ० 43
7. निराला, अपरा (छत्रपति शिवाजी का पत्र), 2000, पृ० 86
8. नागार्जुन, हजार–हजार बाहों वाली, पूरी आजादी का संकल्प आज दुहराते हैं, पृ० 50
9. सनेहीः अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० 250
10. भगवतीचरण वर्मा, मेरी कविताएँ, पृ० 174
11. दिनकर, हुंकार, पृ० 5
12. सुमित्रानंदन पंत, रजत ि"खरः उतर"ाती, पृ० 84